RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-03
March-2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[UGC Listed Journal]

सर्वेश्वर दयाल 'सक्सेना' के काव्य में सामाजिक संघर्ष समाज : अर्थ एवं परिभाषा

Sukesh

TGT Hindi RPSKV Rithala (Delhi)

'समाज' शब्द 'सम' उपसर्गपूर्वक 'अज' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से निष्पन्न होता है।[1] 'सम' का अर्थ–सम्यक् रूप से तथा 'अज' का अर्थ है जाना। अतः एक ही उद्देश्य को लेकर किसी निश्चित दिशा में जानें वालें व्यक्ति समूह को समाज कहते हैं। इस प्रकार उद्देश्यों की समानता व्यक्तियों के समूह को एक समाज का रूप देती है।

सामान्य अर्थ में 'समाज' शब्द का प्रयोग 'व्यक्ति–समूह' के लिए किया जाता है। लेकिन अपने विशिष्ट संबंधों की एक व्यवस्था होती है। मनुष्यों के समूह दीर्घकाल के सम्पर्क के आधार पर अपने संबंधों एवं व्यवहारों की सहायता से एक निश्चित व्यवस्था का निर्माण करते हैं, जिसका अपना ढांचा एवं नियम होते हैं, व्यवस्था के इसी रूप को हम समाज कहते हैं। व्यवस्था से अभिप्राय किसी भी संगठन में पायी जाने वाली विविध प्रकार की प्रणालियों या विधियों से होता है। डॉ॰ महेन्द्रनाथ वर्मा के अनुसार – "एक ही प्रकार के उद्देश्यों और संस्कारों से जुड़े हुए तथा जिनकी एक स्वतन्त्र आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था होती है, मिलकर एक समाज का निर्माण करते हैं।"[2]

जीवन की मूलभूत अनिवार्यताओं रीति–रिवाजों रस्मों आदि की पूर्ति की दृष्टि से भी लोगों में सामाजिक अन्तः संबंध होते हैं। अपनी परिस्थितियों से संघर्ष कर मनुष्य ने समाज में रहना सीखा है। समाज के सभी लोग एक–दूसरे पर आश्रित रहते हैं तथा जीवनयापन करते हैं।

सामाजिक संघर्ष और साहित्य

साहित्य और समाज का संबंध सर्वज्ञात है। आलोचकों ने साहित्य को समाज का दर्पण माना है। संघर्षों की कल्पनापूर्ण अभिव्यक्ति ही साहित्य के रूप में हमारे सामने आती है क्योंकि मानव इस पृथ्वी पर जन्म लेते ही एक एक सांस के लिए संघर्ष करता हैं और समाज व्यक्तियों का समूह माना जाता है। इस प्रकार साहित्य और संघर्ष भी एक दूसरे से जुड़े हुए है। यह भी कहा जा सकता है कि संघर्ष है तो जीवन है और जीवन है तो संघर्ष है। सामाजिक संघर्ष समाज के अन्तर्गत ही उत्पन्न होता है। सामान्य बोलचाल में लोगों के समूह को 'समाज' कहा जाता है। समाजशास्त्री मेकाइवर एवं पेज के मतानुसार – "समाज सामाजिक संबंधों का जाल है।"[3]

संघर्ष ही किसी समाज के विकास, उन्नति, खुशहाली के अग्रदूत होते हैं। समाज को नई दिशा संघर्ष की देता हैं। अनवरत सामाजिक संघर्ष ही एक नयी सामाजिक विचारधारा का प्रवर्तन करते हैं। और इस सामाजिक विचारधारा के प्रवर्तन में साहित्य का योगदान बहुत अधिक है। महान् साहित्य जन संघर्षों की उपज कहा जा सकता है तथा यह सामाजिक परिवर्तन की लड़ाई में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह भी करता है। सच्चा साहित्यकार सामाजिक कटुता को अपने व्यक्तित्व रूपी कवच पर झेलकर, समाज एवं देश के आन–बान में बढ़ोतरी करता है।

सर्वेश्वर के काव्य में सामाजिक संघर्ष के विविध रूप :

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना समाज की सभी श्रेणियों से जुड़ा हुआ साहित्यकार है। वह जीवन में संघर्ष के महत्व को अच्छी तरह समझता है। इनके काव्य में सामाजिक संघर्ष के विविध रूप देखने को मिलते है। जिनका आलोचनात्मक वर्णन इस प्रकार है–

नया समाज : मूल्यों का संक्रमण

समाज में परिवर्तन की स्थिति गतिशीलता की घोतक है। कोई भी स्थिति एक सी नहीं रहती। ज्यों–ज्यों समय चक्र चलता रहता है, त्यों–त्यों समाज की परिस्थितियों में न्यूनता उभरने लगती है मनुष्य जिज्ञासामूलक प्रवृत्ति का प्राणी है। उसका पुरातनता को छोड़ना और न्यूनता के प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक है। समाज और जीवन में यह चक्र, मन्द व तीव्र गति से चलता ही रहता है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में नये समाज के अन्तर्गत आने वाले मूल्यों के संक्रमण को निम्न रूपों में उद्घाटित किया जा सकता है।

सर्वव्यापी खोखलापन

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के काव्य में समकालीन समाज के मूल्यों में सर्वव्यापी खोखलापन को प्रश्नचिह्नित किया गया है। उनके अनुसार आधुनिक जीवन की सबसे बड़ी समस्या यह है कि मनुष्य में दुराव आ गया है जिसके परिणामस्वरूप वह

[1]सं॰ द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ॰ 1179
[2]महेन्द्रनाथ वर्मा, समाजशास्त्र, पृ॰ 29
[3]मैकाइवर एवं पेज, सोसायटी, पृ॰ 5

RRIJM 2015, All Rights Reserved

मौज–अधिक करता है क्योंकि भीतर की वास्तविकता को छिपाने का यही आसान तरीका है

सर्वेश्वर कहते हैं कि यहां जिसका भी दांव चलता है वह अपनी कीमत वसूलना चाहता है।

"भीतर कोन देखता है
बाहर रहो चिकने
यह मत भूलों, यह बाजार हैं
सभी आए हैं बिकने
राम–राम कही और माखन–मिश्री–घोलो।"[4]

सर्वेश्वर को यह खोखलापन मध्यवर्ग की विशेष प्रवृति से प्राप्त होता हैं। उन्होनें अपनी कई कविता में इसका निवारण किया है। 'सूखा' नामक कविता में इसी मध्यवर्ग के खोखलेपन का चित्र खींचा है–

"अभ्यासवश ही देखता हूँ, सुनता हूँ
बोलता हूँ, चुप रहता हूँ
खाली जमीन को घेरता हूँ।"[5]

सर्वेश्वर ढोंगी प्रवृति के लोगों को विश्वासघात की दृष्टि से देखता है सर्वेश्वर जहां भी जाते हैं वहां जिस स्थिति में रहते हैं, किस प्रकार के लोग मिलते हैं इसी कारण उन्हे इस देश में हर समय ढोंग और विश्वासघात की झांकियाँ निकाली जाती हैं–

"झांकियां निकली हैं
ढोंग की विश्वासघात की
बदबू–आती है हर बार
एक मरी हुई बात की।"[6]

बेसरोकारी

सर्वेश्वर ने अपने काव्य में बेसरोकारी का वर्णन भी किया है बेसरोकारी से अर्थ है किसी भी स्थिति में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त न कर पाना। आज हर भारतीय के मस्तिष्क पर यह झा गया है कि जैसे भी हो वैसे ही पड़े रहों वाली प्रकृति। "एक बस्ती जल रही है" कविता में कवि कहना चाहता है कि सारा गाँव आग स`जल रहा है और गाँव के लोगों में इतनी भयानक स्थिति को देखते हुए भी इन सबमें जी रहे हैं मगर उसके विरूद्ध आवाज कोई नहीं उठाना चाहते। वे ऐसी परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर खुश है।

निराश होकर कवि यह कहना चाहता है कि –

"आने दोहाहाकार चीत्कार
चारों तरफ सोखतों के पहाड़
वे खड़ड़ कर देंगे
प्रतिध्वनि तक लौट कर नहीं आएगी।"[7]

आज का जो युग है इस युग में इतिहास भी गूँगा हो गया है। आज इस युग में जो बेकसूर लाशें हैं उनके पास केवल करूण ही है, दूसरी और खाइयों में सिपाही बन्दूकें ताने नहीं है, यह सभी जानते हैं पर –

"इतिहास गूँगा भले हो,
पर अंधा नहीं होता कि उसे देख न सके।"[8]

आज समाज की बनावट ऐसी हो गई है कि लोग सभी परिस्थितियों में एक बात दुहराते रहते हैं कि मुझे इससे कोई लेना देना नहीं क्योंकि आज किसी को एक दूसरे से सरोकार नहीं है–

"कितना आसान है यह कह देना
कि मेरा कोई नहीं है
और कितना कठिन
कि मेरा कोई है।"[9]

सर्वेश्वर कहते है कि मुझे ऐसा लगता है कि दुनिया उस रेलगाड़ी की तरह हो गई हैं जो रोज बस्तियों के बीच से बेसारोकारी से निकल जाती हैं। न रेलगाड़ी को बस्ती से कुछ लेना–देना न बस्ती को उससे। मनुष्य भी रेलगाड़ी के समान शून्य है पर मनुष्य को रेलगाड़ी नहीं मानव बनना है और एक दूसरे के सुख–दुख से अपने को जोड़ना है।

"मैं गुमटी पर रूक जाता हूँ
रेलगाड़िया तेजी से निकल जाती हैं
सामने एक छोटी–सी बस्ती है
या छोटा सा जंगल
बात एक ही है।"[10]

पिछलग्गूपन

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना का मानना है कि हमारा भारत देश आजाद हैं लेकिन भारत के लोगों में स्वतंत्र ढंग से सोचने की शक्ति का विकास नहीं हो पाया है। इसी का परिणाम है कि आम आदमी को अभी तक भेड़ चाल और पिछलग्गूपन से छुटकारा नहीं मिला है। मनुष्य समाज में रहकर किसी प्रकार की भी पहल नहीं करता, बल्कि दूसरों के नेतृत्व की और ही देखता रहता है और बार–बार धोखा खाता है।

चालाक लोग उसकी इस कमजोरी का फायदा उठाते हैं।

"आस्था के नाम पर मूर्खता
विवेक के नाम पर कायरता
मुहर की तरह हर व्यक्ति पर लगी हुई है।"[11]

सर्वेश्वर का मानना है कि मनुष्य को अगर जीवन में सफल होना है तो दूसरों के मुँह तक कर नहीं बल्कि स्वंय कुछ कर दिखाना है। यों तो सड़क पर पड़े सूखे निर्जीव पत्ते भी चलती हुई कार के पीछे भागते हैं मगर इस प्रकार भागने को जीना नहीं कहा जा सकता। जीवन में नई राहें, नए रास्ते बनाने पड़ते है–

"लेकिन उनसे कौन कहे
प्रगति पिछलग्गूपन नहीं है

[4] सर्वेश्वर, कविताएं – दो, पृ॰ 65
[5]वही, पृ॰ 123
[6]सर्वेश्वर, कविताएं – दो, पृ॰ 93
[7] सर्वेश्वर, कुआनो नदी, पृ॰ 62
[8]वही, पृ॰ 67
[9]वही, पृ॰ 73
[10]सर्वेश्वर, कुआनो नदी, पृ॰ 24
[11]सर्वेश्वर, कविताएं – एक, पृ॰ 135

RRIJM 2015, All Rights Reserved

और जीवन आगे बढ़ने के लिए
दूसरों का मुँह नहीं ताकता।"[12]

मनुष्य जो कार्य करता है अपने हर कार्य के लिए दूसरों की ओर ताकता रहता है। अपने हर कार्य के लिए दूसरों की ओर ताकने का भी सर्वेश्वर विरोध करते हैं उनका मानना है अगर जीवन को आगे बढ़ाना चाहते हो तो स्वयं कुछ करो तभी प्रगति होगी–

"और जीवन आगे बढ़ने के लिए
दूसरों का मुँह नहीं ताकता।"

मूल्यहीनता

मूल्यों का जीवन के साथ गहरा संबंध होता है। यही कारण है कि सर्वेश्वर ने वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की मूल्यहीनता को अपने काव्य में रेखांकित किया है। सर्वेश्वर चाहते हैं कि मूल्यहीनता और विकृत व्यवस्था को समाप्त करके नई मूल्यवत्ता जो सामाजिक सन्दर्भों में उचित भी और यथार्थवादी भी हो, को अपनाया जाए। उनकी 'संतवाणी' नामक कविता में इस बात का वर्णन मिलता है–

"तेज आँधी में
वह लालटेन लिए
चला जा रहा था
खुश, कि रास्ता कट जाएगा।"[13]

सर्वेश्वर मूल्यों के विघटन को देखकर 'धीरे–धीरे' कविता में यह अनुभव करता है–

"संडाध फैल रही है–
नक्शे पर देश के
और आँखों में प्यार के
सीमान्त धुंधले पड़ते जा रहे है
और हम चूहों से देख रहे है।"[14]

शोषित समाज बनाम दलित विमर्श

साहित्य और समाज का गहरा संबंध होता है, क्योंकि दोनों के केन्द्र में सृष्टि का सर्वाधिक चैतन्य प्राणी मनुष्य होता है। मनुष्य–मनुष्य के योग से जहां समाज का स्वरूप विकसित होता है, वही मनुष्य द्वारा तपस्वनी की उपासना से साहित्य का सृजन होता है।

प्राचीन काल में समाज चार वर्गों में विभक्त था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र। लेकिन इस भौतिकवादी युग में वर्ण–व्यवस्था, वर्ग–व्यवस्था में परिवर्तित हो गई और समाज में दो नवीन वर्गों का उद्य हुआ– उच्च वर्ग व निम्न वर्ग। उच्च वर्ग और निम्न वर्ग को ही शोषक–शोषित की संज्ञा दी जा सकती है।

जन्म से न तो कोई मनुष्य ब्राह्मण होता है, न ही क्षत्रिय, न ही शूद्र और न ही वैश्य होता है। वस्तुतः सभी कुछ कर्म के आधार पर उनका अधिमान किया गया है। जिस प्रकार कुम्हार एक ही प्रकार की मिट्टी के घड़े बनाते हैं, उसी प्रकार सभी प्राणियों को विधाता ने एक प्रकार की मिट्टी (पंच तत्वों) से बनाया है फिर विषमता कैसी?

"एक मिट्टी के सम भांडे सब को ऐको विरजनहारा।
रविदास कावै एको घट भीतर समझो एकै घड़ै कुम्हारा।"[15]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने एक अन्य उदाहरण देकर समाज की स्थिति का चित्रण किया है जिसमें एक नारी का चित्रण किया है जो भूख व गरीबी को सहन न कर सकने के कारण अपने बच्चों सहित कुएं में कूद पड़ी–

"काम न मिलने पर
अपने तीन भूखे बच्चों को लेकर
कूद पड़ी हूँ जूरी कुएँ में
कुएँ का पाना ठण्डा था।"[16]

सामाजिक समानता का संघर्ष : एक अनिवार्यता

समाज और साहित्य का गहरा संबंध है और इस संबंध को बनाए रखने में साहित्यकार मजबूत कड़ी का काम करता है। साहित्यकार समाज की समस्याओं को देखता, सुनता और समझता है। समाज में सर्वत्र अन्याय एवं अत्याचार फैला हुआ है। सर्वेश्वर ने अपने काव्य में सामाजिक असंतुलन की समस्या को बड़ी ही स्पष्टता के साथ व्यक्त करते हैं। इन्होनें रंग एवं जाति में कोई भेद नहीं माना है। कवि का कहना है कि हमें तो पूरी व्यवस्था को बदलना पड़ेगा। सम्पूर्ण क्रांति का आहवान करना पड़ेगा ऐसा करके ही हम इन पूंजीपतियों की आंखे खोल सकते है –

"मुझको पहली बार
महसूस हुआ
कि आँखें हमेशा
इसी तरह खुलती हैं
खोली जा सकती हैं।"[17]

सर्वेश्वर एक सामाजिक बदलाव चाहता है ताकि समाज में समानता का भाव हो। कवि का मानना है कि एक अच्छा समाज वही होता है जिसमें कोई भेदभाव न हो, जाति–पाति का भेदभाव न हो और अमीर–गरीब में भी कोई भेदभाव न हो।

सर्वेश्वर गरीब व्यक्ति का आहवाहन करते हैं कि तुम बेशुमार गन्दीयों, झोपड़ों और गटरों से निकल कर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए एक साथ आगे बढ़ो–

"चलो इस जंगल पर
बनकर विराट आरे की धार
साधिकार।"[18]

[12]वही
[13]सर्वेश्वर, जंगल का दर्द, पृ॰ 56
[14] सर्वेश्वर, कविताएं – दो पृ॰ 90
[15]आदिग्रन्थ, भैरउ, पृ॰ 1133
[16]सर्वेश्वर, खूंटियों पर टंगे लोग, पृ॰ 46
[17] सर्वेश्वर, कोई मेरे साथ चले, पृ॰ 57
[18] वही, खूंटियों पर टंगे लोग, पृ॰ 51

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सामाजिक संबंधों में विघटन का संघर्ष

स्वतन्त्र्योतर भारत में बढ़ते औद्योगीकरण, शहरीकरण तथा अर्थाभाव के परिणामस्वरूप पूर्व–स्थापित सामाजिक मूल्य लड़खड़ाने लगे हैं। आधुनिक सामाजिक व पारिवारिक संबंधों में चाहे वे पति–पत्नि के हो, चाहे पिता–पुत्र के, चाहे भाई–बहन के तथा भाई–भाई के, तनाव एवं विषाद की एक काली छाया हमें सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। एक साथ रहते हुए भी दाम्पत्य संबंध समाप्त होते जा रहे है। निरन्तर बढ़ती कड़वाहट के कारण पति–पत्नि के मध्य संबधं टूटते जा रहे हैं, जो समाज के लिए घातक है।

सामाजिक संबंधों के इस विघटन ने जीवन से सम्पूर्णता को नष्ट कर दिया है और चारों ओर सब अकेलापन महसूस कर रहे है। सर्वेश्वर ने इसका वर्णन निम्न पंक्तियों के माध्यम से प्रस्तुत किया है–

"हम सब आधे रास्तों की जिन्दगी जी रहे हैं
हम सम्पूर्ण आवेगों के साथ
न तो घृणाकर पाते हैं, न प्यार, न तो क्रोध कर पाते हैं, न क्षमा
अधूरी कामनांए, अधूरी इच्छाएं, अधूरे सपने, अधूरी बातें।"[19]

सर्वेश्वर सामाजिक संबंधों को टूटता हुआ नहीं देख सकते। आज के युग में जीवन का सार भी यही है। कवि अकेलेपन के डर से इतने घबराए है कि एक टहनी को भी अकेला नहीं देख पा रहे–

"सूनी राह में दीखी
एक अकेली टहनी
मैने उसे दो टुकड़े कर
पास–पास रख दिया।"[20]

निष्कर्ष रूप से हम मान सकते हैं कि सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने अपने जीवन में अनेक सामाजिक उतार–चढ़ावों का अनुभव किया है और उनका यह अनुभव उन्होंने अपने साहित्य में भी व्यक्त किया है। इनके काव्य सामाजिक संघर्ष के विभिन्न रूपों में मिलते है। कवि महोदय को सर्वत्र खोखलापन, बेसरोकारी, पिछलग्गूपन तथा मूल्यहीनता ही नजर आती है। इन सभी समस्याओं का वर्णन इनके काव्य में मिलता है। ये शोषित समाज के साथ सहानुभूति रखते हैं। इनके काव्य में सामाजिक संबंधों में हो रहे विघटन का भी चित्रण मिलता है। और इन संबंधों में कवि नए मूल्यों की स्थापना करना चाहते हैं।

[19]सर्वेश्वर, कविताएं – एक, पृ॰ 198
[20] वहीं, जंगल का दर्द, पृ॰ 15